गायत्री मंत्र के प्रथम पद ॐ भूर्भुवः स्वः की व्याख्या

ईश्वर का विराट् रूप

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

• पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

ईश्वर का विराट रूप

गायत्री मंत्र में प्रयुक्त "**ॐ भूर्भुवः स्वः**" ईश्वर के विराट स्वरूप की झाँकी कराता है—

भूर्भुवः स्वस्त्रयो लोका व्याप्तमोम्ब्रह्म तेषु हि।
स एव तथ्यतो ज्ञानी यस्तद्वेत्ति विचक्षणः॥

अर्थात "भूः भुवः स्वः ये तीन लोक हैं। इनमें 'ओ३म्' ब्रह्म व्याप्त है। जो उस ब्रह्म को जानता है वास्तव में वही ज्ञानी है।"

भूः (पृथ्वी), भुवः (पाताल), स्वः (स्वर्ग) ये तीनों ही लोक परमात्मा से परिपूर्ण हैं। इसी प्रकार भूः (शरीर), भुवः (संसार), स्वः (आत्मा) ये तीनों ही परमात्मा के क्रीड़ास्थल हैं। इन सभी स्थलों को, निखिल विश्व-ब्रह्मांड को, भगवान का विराट रूप समझकर, उस उच्च आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए, जो गीता के ११वें अध्याय में भगवान ने अपना विराट रूप बतलाकर अर्जुन को प्राप्त कराई थी।

प्रत्येक जड़-चेतन पदार्थ में, प्रत्येक परमाणु में, भूः भुवः स्वः में, सर्वत्र 'ओ३म्' ब्रह्म को व्याप्त देखना, प्रत्येक वस्तु में विश्वव्यापी परमात्मा का दर्शन करना, एक ऐसी आत्मिक विचारपद्धति है, जिसके द्वारा विश्व सेवा की भावना पैदा होती है। इस भावना के कारण संसार के प्रत्येक पदार्थ एवं जीव के संबंध में एक ऐसी श्रद्धा उत्पन्न होती है, जिसके कारण अनुचित स्वार्थ-साधन का नहीं वरन सेवा का ही कार्यक्रम बन पड़ता है। ऐसा व्यक्ति प्रभु की इस सुरम्य वाटिका के किसी भी कण के साथ अनुचित अथवा अन्यायमूलक व्यवहार नहीं कर सकता।

कर्त्तव्यशील पुलिस, न्यायाधीश अथवा राजा को सामने खड़ा देखकर कोई पक्का चोर भी चोरी करने या कानून तोड़ने का साहस नहीं कर सकता। इसी प्रकार जिस व्यक्ति के मन में यह भावना दृढ़तापूर्वक समाई हुई है कि परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है और हजार आँखों में उसके हर विचार

और कार्य को देख रहा है तो उसकी यह हिम्मत ही हो सकती है कि कोई पाप गुप्त या प्रकट रूप से करे।

आध्यात्मिकता का मूल आधार

जो व्यक्ति भगवान के इस विराट स्वरूप की वास्तविकता को हृदयंगम कर लेगा और विश्व के कार्य-कारण रहस्य को समझ जाएगा, वह सदैव यही विश्वास करेगा कि भगवान इस सृष्टि में आत्मरूप होकर प्रतिष्ठित है। इस प्रकार की भावना जीवन के अंत तक स्थिर रहे, इसी उद्देश्य से हमारे यहाँ योग्यता, बुद्धि, सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के कर्त्तव्य निश्चित कर दिए गए हैं। कर्त्तव्यों में विभिन्नता होते हुए प्रेरणा में समता है, एक निष्ठा है, एक उद्देश्य है और यह उद्देश्य ही अध्यात्म कहलाता है। यह अध्यात्म लादा नहीं गया है, थोपा भी नहीं गया है, बल्कि प्राकृतिक होने के कारण स्वभाव है और स्वभाव को अध्यात्म कहने भी लगे हैं। **'स्वभाव अध्यात्म उच्यते।'**

विराट के दो विभाग हैं। एक है अंतश्चैतन्य और दूसरा है बाह्य अंग। बाह्य अंग के समस्त अवयव अपनी-अपनी कार्य दृष्टि से स्वतंत्र सत्ता रखते हैं। कर्त्तव्य भी उनकी उपयोगिता की दृष्टि से प्रत्येक के भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन ये सब हैं उस विराट अंग की रक्षा के लिए, उस अंतश्चैतन्य को बनाए रखने के लिए। इस प्रकार अलग होकर और अलग कर्मों में प्रवृत्त होते हुए भी जिस चैतन्य के लिए उनकी गति हो रही है, वही हिंदू संस्कृति का मूल आधार है। गति की यह एकता-समता विनष्ट न हो इसी के लिए संस्कृति के साथ धर्म को जोड़ा गया है और यह योग ऐसा हुआ है, जिसे पृथक नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि दोनों समानार्थक से दिखाई पड़ते हैं।

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति से ही विराट की एकता का भाव स्पष्ट हो जाता है। जो वास्तविक है उसी की धारणा रखना धर्म है। वास्तविक है—चैतन्य। यह नित्य है, अविनश्वर है, शाश्वत है। सभी धर्मों में आत्मा के नित्यत्व को, शाश्वतपन को स्वीकार किया गया है। लेकिन अंगांगों में पृथक दिखाई देते रहने पर भी जो उसमें एकत्व है, उसको सुरक्षित रखने की ओर ध्यान न देने से विविध संप्रदायों की सृष्टि हो पड़ी है। तो भी

धर्म की इस एकता को बनाए रखने, जाग्रत रखने की प्रवृत्ति अभी तक कायम है, यही कारण है कि संसार में नाना संप्रदायों-मजहबों की सृष्टि हुई लेकिन आज उनका नाम ही शेष है। पर हिंदू अपनी विशालता के साथ जिंदा है। यह धर्म वास्तव में मानव धर्म है। मानव की सत्ता जिसके द्वारा कायम रह सकती है और जिससे वह विश्व चैतन्य के विराट अंग का अंग बना रह सकता है, उसी के लिए इसका आदेश है।

हमारे धर्म की सबसे बड़ी विशेषता उसकी अपनी विशिष्ट उपासना पद्धति है। विश्व आत्मा की उपासना के लिए उसके समय विभाग में कोई एक समय निश्चित नहीं है। उपासना देश और काल में विभाजित नहीं है। उनका तो प्रत्येक क्षण उपासनामय है। वे अपने विश्व चैतन्य को एक क्षण के लिए भी भूलना नहीं चाहते, बल्कि गतिविधि का प्रत्येक भाग इन चैतन्य देव के लिए ही लगाना चाहते हैं।

विराट के चार स्वरूप

हिंदू धर्म के पौराणिक ग्रंथों में ब्रह्माजी का जो स्वरूप वर्णित है, उसमें उनके चार मुख दिखलाए गए हैं। यह परमात्मा की सत्ता का एक आलंकारिक चित्र है। चार मुख उसके चार भेदों का दिग्दर्शन कराते हैं। इन चार मुखों को (१) ब्रह्म (२) ईश्वर (३) विष्णु और (४) भगवान कहा जाता है। वैसे तो परमात्मा एक ही है, पर उससे उत्पन्न विश्व व्यवस्था को समझने के लिए उसके चार विभाग कर दिए गए हैं—

१. ब्रह्म

सात्विकता की ऊँची कक्षा को ब्रह्म कहते हैं, वैसे तो परमात्मा सत्, रज, तम तीनों गुणों में मौजूद है, पर उसकी ब्राह्मी ज्योति सतोगुण में ही है। सात्विक भाव, ब्रह्मकेंद्र से ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के मन में यों तो अनेक प्रकार की इच्छाएँ उत्पन्न होती रहती हैं, पर जब सतोगुणी आकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं तो उनका उद्‌गम केंद्र प्रेरकबिंदु वह ब्रह्म ही होता है। ऋषियों में, महात्माओं में, संतों में, सत्पुरुषों में हम परमात्मा का अधिक अंश देखते हैं, उन्हें परमात्मा के समीप समझते हैं और ऐसा मानते हैं कि परमात्मा की उन पर कृपा है। परमात्मा की विशेष सत्ता उनमें मौजूद है।

यह सत का आधिक्य ही ब्राह्मी स्थिति है। पूर्ण सात्विकता में जो अधिष्ठित हो जाते हैं, वे 'ब्रह्म निर्वाण' प्राप्त कहे जाते हैं।

मनुष्य की अंतश्चेतना प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से बनी हुई है। मन, बुद्धि और चित्त अहंकार प्रकृति के भौतिक तत्त्वों द्वारा निर्मित हैं, जो कुछ हम सोचते, विचारते, धारण या अनुभव करते हैं, वह कार्य मस्तिष्क द्वारा होता है। मस्तिष्क की इच्छा, आकांक्षा, रुचि तथा भावना इंद्रिय रसों तथा सासांरिकपदार्थों की भली-बुरी अनुभूति के कारण होती है। मस्तिष्क में जो कुछ ज्ञान, गति और इच्छा है, वह सासांरिक स्थूल पदार्थों के आधार पर ही बनती है। स्वयं मस्तिष्क भी शरीर का एक अंग है और अन्य अंगों की तरह वह भी पंचतत्त्वों से, प्रकृति से बना हुआ है। इस अंत:करण चतुष्टय से परे एक और सूक्ष्म चेतना केंद्र है जिसे आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। यह ब्रह्म सात्विकता का केंद्र है। आत्मा में से सदा ही सतोगुणी प्रेरणाएँ उत्पन्न होती हैं। चोरी, व्यभिचार, हत्या, ठगी आदि दुष्कर्म करते हुए हमारा दिल धड़कता है, कलेजा काँपता है, पैर थरथराते हैं, मुँह सूखता है, भय लगता है और मन में तूफान सा चलता है। भीतर ही भीतर एक सत्ता ऐसा दुष्कर्म करने के लिए रोकती है। यह रोकने वाली सत्ता आत्मा है। इसी को ब्रह्म कहते हैं, असात्विक कार्य, नीचता, तमोगुण, पाप और पशुता से भरे हुए कार्य उसकी स्थिति से विपरीत पड़ते हैं, इसीलिए उन्हें रोकने की भीतर ही भीतर प्रेरणा उत्पन्न होती है। यह प्रेरणा शुभ-सतोगुणी पुण्य कर्मों को करने के लिए भी उत्पन्न होती है।

कीर्ति से प्रसन्न होना मनुष्य का स्वभाव है और यह स्वभाव अच्छे-अच्छे प्रशंसनीय, श्रेष्ठ कर्म करने के लिए प्रोत्साहन करता है। शुभ कर्मों से यश प्राप्त होता है और यश से प्रसन्नता प्राप्त होती है। यश न भी मिले तो भी सत्कर्म करने के उपरांत अंतरात्मा में एक शांति अनुभव होती है, यह आत्मतृप्ति इस बात का प्रमाण है कि अंत:करण की अंतरंग आकांक्षा के अनुकूल कार्य हुआ है। दया, प्रेम, उदारता, त्याग, सहिष्णुता उपकार, सेवा-सहायता, दान, ज्ञान, विवेक की सुख-शांतिमयी इच्छा तरंगें आत्मा में से ही उद्भूत होती हैं। यह उद्गम केंद्र ही ब्रह्म है।

वेदांत दर्शन ने सारी शक्ति के साथ यही प्रतिपादित किया है कि आत्मा ही ईश्वर है। 'तत्त्वमसि', 'सोऽहम्', 'शिवोऽहम्' 'अयमात्मा ब्रह्म' सरीखे सूत्रों का अभिप्राय यही है कि आत्मा ही ब्रह्म है। ईश्वर का प्रत्यक्ष अस्तित्व अपनी आत्मा में ही देखने की वेदांत की साधना है। अन्य ईश्वर भक्त भी अंत:करण में परमात्मा की झाँकी करते हैं, असंख्यों कविताएँ श्रुतिवचन ऐसे उपलब्ध होते हैं, जिनमें यह प्रतिपादन किया गया है कि "बाहर ढूँढ़ने से नहीं अंदर ढूँढ़ने से परमात्मा मिलता है।"

संत कबीर ने कहा है कि परमात्मा हमसे चौबीस अंगुल दूर है। मन का स्थान मस्तिष्क और आत्मा का स्थान हृदय है। मस्तिष्क से हृदय की दूरी चौबीस अंगुल है। इस प्रतिपादन में ईश्वर को अंत:करण में स्थित बताया गया है।

मनुष्य दैवी और भौतिक तत्त्वों से मिलकर बना है। इसमें मन भौतिक और आत्मा दैवी तत्त्व है। आत्मा में तीन गुण हैं—सत्, चित् और आनंद। वह सतोगुणी है, श्रेष्ठ, शुभ, दिव्य मार्ग की ओर प्रवृत्ति वाला एवं सतत हमेशा रहने वाला अविनाशी है। चित-चैतन्य, जाग्रत क्रियाशील, गतिवान है, किसी भी अवस्था में वह क्रियारहित नहीं हो सकता। आनंद, प्रसन्नता, उल्लास, आशा तथा तृप्ति उसका गुण है। आनंद की दिशा में उसकी अभिरुचि सदा ही बनी रहती है। आनंद, अधिक आनंद, अति आनंद उपलब्ध करना उसके लिए वैसा ही प्रिय है जैसा मछली के लिए जल। मछली जलमग्न रहना चाहती है, सत्, चित्, आनंद गुण वाली आत्मा में जैसे-जैसे निकटता होती जाती है वैसे ही वैसे मनुष्य अधिक सात्त्विक, अधिक क्रियाशील और अधिक आनंदमग्न रहने लगता है। योगीजन ब्रह्म की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं। इस साधना का कार्यक्रम यह होता है कि आत्मा की प्रेरणा के अनुसार मन की सारी इच्छा और कार्य प्रणाली हो। भौतिक पदार्थों के नाशवान, अस्थिर और हानिकर आकर्षणों की ओर से मुँह मोड़कर जब आत्मा की प्रेरणा के अनुसार जीवनचक्र चलने लगता है तो मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर महान मनुष्य बन जाता है। ऐसे महापुरुषों के विचार और कार्य सात्विकता, चैतन्यता और आनंददायक स्थिति से परिपूर्ण होते हैं। उन्हें संत, महात्मा, योगी, तपस्वी, परमहंस, सिद्ध, आत्मदर्शी या

ब्रह्मपरायण कहते हैं। जिनका ब्रह्मभाव आत्मविकास पूर्ण सात्विकता तक विकसित हो गया है, समझना चाहिए कि उन्होंने ब्रह्म को प्राप्त कर लिया, उन्हें आत्मदर्शन हो गया।

२. ईश्वर

इस समस्त विश्व के मूल में एक शासक, संचालक एवं प्रेरक शक्ति काम करती है। सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह निरंतर अपनी नियत चाल से अविश्रांत यात्रा जारी रखे हुए हैं। तत्त्वों के सम्मिश्रण से एक नियत व्यवस्था के अनुसार तीसरा पदार्थ बन जाता है। बीज अपनी ही जाति के पौधे उत्पन्न करता है। सूर्य एक पल का विलंब किए बिना ठीक समय उदय और अस्त होता है। समुद्र में ज्वार-भाटा नियत समय पर आते हैं। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश सबकी क्रियाएँ अचूक हैं। नन्हें-नन्हें अदृश्य परमाणु, अत्यंत द्रुतगति से हरकत करते हैं, पर उनकी इस गति में रंचमात्र भी अंतर नहीं आता। एक परमाणु को दूसरे परमाणु से लड़ाने के रहस्य को ढूँढ़कर वैज्ञानिकों ने प्रलयंकारी 'परमाणु बम' बनाए हैं। यदि एक सेकंड में हजारों मील की गति से घूमने वाले यह परमाणु आपस में लड़ जाया करते तो आएदिन प्रलय उपस्थित हो जाया करती परंतु हम देखते हैं कि प्रकृति का हर एक परमाणु अपने गुण, कर्म को ठीक प्रकार कर रहा है।

यदि सृष्टि में नियमितता न होती तो एक भी वैज्ञानिक आविष्कार सफल न होता। आग कभी गरमी देती कभी ठंढक, तो भला उसके भरोसे कोई काम कैसे होता? नित्य अनेकों वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे हैं, इनका आधार इसी पर निर्भर है कि प्रकृति की दृश्य और अदृश्य शक्तियाँ अपने नियत नियमों से रंचमात्र भी विचलित नहीं होतीं। यह सर्वमान्य और सर्वविदित तथ्य है कि प्रकृति की समस्त क्रिया प्रणाली नियमित है। उसके मूलभूत नियमों में कभी अंतर नहीं पड़ता है।

इस नियमितता और गतिशीलता के मूल में एक सत्ता अवश्य है। विचार और प्राण से रहित जड़ प्रकृति अपने आप इस क्रिया-कलाप को नहीं चला सकती। रेल, मोटर, इंजन, हवाई जहाज, तलवार, कलम आदि जितने भी निर्जीव यंत्र हैं, उनके चलाने वाला कोई न कोई सजीव प्राणी

अवश्य होता है। इसी प्रकार प्रकृति की नियमितता और उद्गम केंद्र भी कोई न कोई अवश्य है। इस केंद्र को हम ईश्वर कहते हैं। ईश्वर का अर्थ है—स्वामी। जड़ प्रकृति के निर्माण, व्यवस्था एवं संचालन में जो शक्ति काम करती हैं, वह ईश्वर है।

केवल जड़ प्रकृति का ही नहीं, चेतन जगत का भी वह पूरी तरह नियमन करती है। इतने अपने नियमों के अंतर्गत प्राणिमात्र को बाँध रखा है। जो उस ईश्वर के नियमों के अनुसार चलते हैं, वे सुखी रहते हैं, विकसित होते हैं और जो उन नियमों को तोड़ते हैं, वे दुःख पाते और हानि उठाते हैं। स्वास्थ्य के नियमों पर चलने वाले, सदाचारी, संयमी, मिताहारी लोग स्वस्थ रहते हैं और चटोरे, दुराचारी, स्वेच्छाचारी लोग बीमारी, कमजोरी एवं अकाल मृत्यु के शिकार होते हैं। इसी प्रकार सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में काम करने वाले ईश्वरीय नियमों का ठीक प्रकार से पालन करते हैं। वे उन क्षेत्रों में स्वस्थता, समृद्धि एवं उन्नति प्राप्त करते हैं और जो उन नियमों के प्रतिकूल कार्य करते हैं, वे उन क्षेत्रों में दुष्परिणाम भुगतते हैं। पराक्रम, पुरुषार्थ, प्रयत्न, लगन, साहस, उत्साह एवं धैर्य यह सब सफलता के मार्ग की ईश्वरीय पगडंडियाँ हैं। इन पर जो चलते हैं, वे अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। जो इस राजमार्ग पर नहीं चलते वे पिछड़ जाते हैं।

ईश्वर पूर्णतया निष्पक्ष, न्यायकारी नियम रूप है। वह किसी के साथ रत्ती भर भी रियायत नहीं करता। जो जैसा करता है, वह वैसा ही भोगता है। अग्नि या बिजली के नियमों के अनुसार यदि उनसे काम लिया जाए तो वे हमारे लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती हैं पर यदि अग्नि या बिजली का दुरुपयोग किया जाए तो वह भयंकर दुर्घटना उपस्थित कर देती है। इसी प्रकार जो लोग ईश्वरीय नियमों के अनुसार काम करते हैं उनके लिए ईश्वर वरदाता, त्राता, रक्षक, सहायक, कृपा सिंधु,भक्तवत्सल हैं, पर जो उसके नियमों में गड़बड़ी करता है उसके लिए वह यम, काल, अग्नि, शंकर, वज्र एवं दुर्दैव बन जाता है। मनुष्य को स्वतंत्र बुद्धि देकर ईश्वर ने उसे काम करने के लिए स्वच्छंद अवश्य बना दिया है पर

नियमन अपने ही हाथ में रखा है। वह जैसे को तैसा फल दिए बगैर नहीं छोड़ता। आग और लकड़ी को इकट्ठा करना या न करना यह हमारी इच्छा पर निर्भर है, पर उन दोनों को इकट्ठा होने पर ईश्वरीय नियमों के अनुसार जो ज्वलन क्रिया होगी उसे रोकना अपने वश की बात नहीं है। इसी प्रकार शुभ-अशुभ कर्म करना तो हमारे अपने हाथ में हैं, पर उनसे जिन भले-बुरे परिणामों की उत्पत्ति होगी, वह ईश्वरीय नियामक शक्ति के हाथ में है।

जैन और बौद्ध कर्म के फल की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं, अतएव वे ईश्वर को ब्रह्म की द्वितीय सत्ता मानते हैं। सत्कर्म करना प्रकृति के कठोर, अपरिवर्तनशील नियमों का ध्यान रखना, अपने आचरणों और विचारों को ईश्वरीय नियमों की मर्यादा में रखना ईश्वर पूजा है। अपनी योग्यता और शक्तियों को समुन्नत करना, बाहुबल के आधार पर आगे बढ़ना, अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करना ईश्वरवादियों का प्रधान स्वभाव होता है, क्योंकि वे जानते हैं कि सबलों, क्रियाशीलों और जागरूकों को बढ़ाना तथा कमजोरी, अकर्मण्यों एवं असावधानों को नष्ट करना प्रकृति का नियम है। इस कठोर नियम में किसी के बूते कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। ईश्वरवादी इस नग्न सत्य को भलीभाँति जानते हैं कि ईश्वर उन्हीं की मदद करता है जो अपनी मदद आप करता है। इसलिए वे ईश्वरीय कृपा प्राप्त करके उसके नियमों से लाभ उठाने के लिए सदा शक्तिसंचय करने तथा आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। आत्मनिर्भर और आत्मावलंबी होते हैं। अपने भाग्य का आप निर्माण करते हैं। ईश्वरीय नियमों को ध्यानपूर्वक देखते, परखते और हृदयंगम करते हैं तथा उनकी वज्रोपम कठोरता एवं अपरिवर्तनशीलता का ध्यान रखते हुए अपने अचरणों को औचित्य की, धर्म की सीमा के अंतर्गत रखते हैं।

३. विष्णु

विष्णु संसार में एक संतुलन शक्ति भी कायम कर रही है। जो किसी वस्तु की अतिवृद्धि को रोककर उसे यथास्थान ले आती है। संसार की सुंदरता और वैभव शालीनता को एक कुरूपता और विनाश से बचाती है। प्रजनन शक्ति को ही लीजिए। एक-एक जोड़ा कई-कई बच्चे पैदा

करता है। यदि यह वृद्ध पीढ़ी दर पीढ़ी निर्वाध गति से चलती रहे तो थोड़े ही दिन में सारी पृथ्वी इतनी भर जाए कि संसार में प्राणियों को खड़ा होने के लिए भी जगह न मिले। मछली करीब सत्रह हजार अंडे प्रतिवर्ष देती है। मक्खी-मच्छर और कीट-पतंग एक हजार से लेकर सात हजार तक अंडे प्रतिवर्ष देते हैं। वे अंडे एक-दो सप्ताह में ही पककर बच्चे की शक्ल में आ जाते हैं और फिर दो-चार हफ्ते बाद ही वे भी अंडे देने लगते हैं। इनकी एक ही साल में प्रायः आठ पीढ़ी हो जाती हैं। यदि ये सब बच्चे जीवित रहें तो दस-पाँच साल में ही सारा संसार उनमें से एक जाति के रहने के लिए भी पर्याप्त न रहेगा। चींटी, दीमक, टिड्डी आदि कीड़े भी तेजी से बढ़ते हैं। सुअर, बकरी आदि भी तेजी से प्रचुर मात्रा में संतान-वृद्धि करते हैं। एक जोड़ा स्त्री-पुरुष भी औसतन आठ-दस बच्चे पैदा करता है। यह अभिवृद्धि यदि न रुके तो संसार के सम्मुख दस-पाँच वर्ष में ही बड़ी विकट परिस्थिति उत्पन्न होकर खड़ी हो सकती है। परंतु लाखों-करोड़ों वर्ष प्राणियों को इस पृथ्वी पर हुए हो गए, ऐसी परिस्थिति कभी भी उत्पन्न नहीं हुई। सृष्टि की संतुलन शक्ति उस विषमता को उत्पन्न होने से रोके रहती है। दुर्भिक्ष, भूचाल, महामारी, युद्ध तथा किसी न किसी दैवी प्रकोप द्वारा प्रकृति प्राणियों की प्रजनन शक्ति से उत्पन्न होने वाले खतरे का निराकरण करती रहती है।

रात्रि का अंधकार एक सीमा तक बढ़ता है। उस बाढ़ को प्रकृति रोकती है और पुनः दिन का प्रकाश लाती है। मध्याह्न तक सूर्य की तेजी बढ़ती है, फिर घटने लगती है। समुद्र में ज्वार आते हैं; फिर थोड़े समय बाद उसका प्रतिरोधी भाटा आता है। चंद्रमा घटते-घटते क्षीण होता है फिर बढ़ने लगता है। गरमी के बाद और सरदी के बाद का मौसम आता है। मरने वाला जन्मता है और जन्मने वाला मृत्यु की तैयारी करता है। सृष्टि के सौंदर्य का क्रम यथावत चला आता है, उसका बैलेंस बराबर कायम रहता है—संतुलन बिगड़ने नहीं पाता।

पुराणों में ऐसे वर्णन आते हैं कि देवताओं को जब असुर सताते हैं तो वे इकट्ठे होकर विष्णु भगवान के पास जाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हमारी रक्षा कीजिए। कई पुराणों में ऐसी कथाएँ मिलती हैं कि पृथ्वी पर

जब अधर्म बढ़ा तो धरती माता गौ का रूप धारण कर विष्णु भगवान के पास गई और प्रार्थना की कि अब मुझसे पाप का बोझ नहीं सहा जाता मेरा उद्धार कीजिए। देवताओं की रक्षा करने तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिए विष्णु भगवान अवतार धारण करते हैं। गीता में भी ऐसी ही प्रतिज्ञा है। (**यदा यदा हि धर्मस्य तदात्मानाम् सृजाम्यहम्**) बुराइयों में यह गुण है कि वे आसानी से और तेजी के साथ बढ़ती हैं। पानी ऊपर से नीचे की ओर बड़ी तेज़ी से स्वयमेव दौड़ता है, पर यदि उसे नीचे से ऊपर चढ़ाना हो तो बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। पत्थर को ऊपर से नीचे की ओर फेंके तो जरा से संकेत के साथ वह तेजी से नीचे गिरेगा और अगर बीच में कोई रोकने वाली चीज न आने तो सैकड़ों मील नीचे गिरता चला जाएगा। परंतु यदि उस पत्थर को ऊपर फेंकें तो बड़ा जोर लगाकर फेंकना पड़ेगा सो भी थोड़ी ऊँचाई तक जाएगा फिर गिर पड़ेगा। इसी प्रकार बुराई के मार्ग पर पतन की ओर मन तेजी से गिरता है, पर अच्छाई की ओर कठिनाई से चढ़ता है। लोगों का झुकाव पाप की ओर अधिक होने के कारण थोड़े ही समय में पाप छा जाता है और फिर उसे दूर करने के लिए, संतुलन ठीक रखने के लिए इस विष्णु-शक्ति को किसी न किसी रूप से प्रकट होना पड़ता है, उस प्राकट्य को 'अवतार' कहते हैं।

शरीर में रोगों के विजातीय विषैले परमाणु इकट्ठे हो जाने पर रक्त की जीवनीशक्ति उत्तेजित होती है और उन विषैले परमाणुओं को मार भगाने के लिए युद्ध आरंभ कर देती है। रक्त के श्वेत कणों और रोग कणों में भारी मार-काट मचती है, खून-खच्चर होता है। इस संघर्ष को बीमारी कहते हैं। बीमारी में पीड़ा, फोड़ा, पीव, पसेव, दस्त, उलटी, जलन आदि के लक्षण होते हैं। युद्ध में चोट लगती है, दरद होता है, यही बीमारी की पीड़ा है, खून-खच्चर होता है—यही पीव, यही दस्त आदि है। बीमारी का प्रयोजन शरीर को निर्दोष बनाना है। अवतार शक्ति का भी यही कार्य होता है। जब रावण, कंस हिरण्यकशिपु सरीखे कुविचार के प्रतिनिधि अधिक बढ़ जाते हैं तो पापों की प्रतिक्रियास्वरूप अंतरिक्ष लोकों में हलचल मचती है और उस विषमता को हटाने के लिए अवतार प्रकट होता है। जब ग्रीष्मऋतु का ताप असह्य हो जाता है तो उसे शांत करने के

लिए मेघमालाएँ गर्जती हुई चली आती हैं। पापों की अभिवृद्धि का नियमन करने के लिए वैष्णवी सत्ता अवतार धारण करके प्रकट होती है और भीषण संघर्ष उत्पन्न करके शांति स्थापित करती है। "**परित्राणाय साधूनाम विनाशाय च दुष्कृताम्**" अवतार का यही उद्देश्य होता है। धर्म की संस्थापना के लिए वह बार-बार प्रकट होता है।

अवतार समष्टि आत्मा का—परमात्मा का प्रतीक है। सभी आत्माओं की एक सम्मिलित सत्ता है, जिसे '**विश्वमानव**' या समाज की एक सम्मिलित आत्मा कहते हैं। यही परमात्मा है। एक मनुष्य यह चाहता है कि मैं सुखपूर्वक रहूँ, मेरे साथ में सब प्रेम, भलाई एवं सहयोग का बरताव करें कोई। यह नहीं चाहता कि मेरे साथ चोरी, हिंसा, ठगी, कठोरता, अन्याय का बरताव करें। यही इच्छा '**विश्वमानव**' की समिति आत्मा या परमात्मा की है। अवतार धर्म की रक्षा के लिए होता है। अधर्म अर्थात विश्वमानव की इच्छाओं के प्रतिकूल कार्य जब संसार में अधिक बढ़ जाते हैं तो उसे दूर करने के लिए विश्वमानव के अंतस्थल में प्रतिक्रिया होती है और विरोध का उफान उबला पड़ता है। इस उफान को अवतार के नाम से पुकारा जाता है।

अवतार एक अदृश्य प्रेरणा है। सूक्ष्म वातावरण में परमात्मा की इच्छा का आवेश भर जाता है। जैसे आकाश में आँधी छाई हुई हो और उसी समय पानी बरसे तो वर्षा की बूँदें उस आँधी की धूलि से मिश्रित होती हैं। वसंत ऋतु में प्रकृति के सूक्ष्म अंतराल में 'काम क्षोभ' का आवेश आता है। उन दिनों सभी नर-नारियों में, पशु-पक्षियों में, जीव-जंतुओं में कामेच्छा फूट पड़ती है। भय, क्रोध, हिंसा, सांप्रदायिक, राजनीतिक तनाव, घृणा तथा सत्कर्मों की भी एक लहर आती है, वातावरण में आवेश आता है। उस आवेश में प्रेरित होकर कुछ विशिष्ट पुण्यात्मा, जीवनयुक्त महापुरुष संसार में आते हैं और परमात्मा की इच्छा को पूरा करते हैं। एक समय में अनेकों अवतार पूरे होते हैं; किसी में न्यून, किसी में अधिक शक्ति होती है। इस शक्ति का माप करने का पैमाना 'कला' है। बिजली को नापने के लिए 'यूनिट' गरमी को नापने के लिए डिगरी, लंबाई को नापने के लिए 'इंच', दूरी को नापने के लिए 'मील' जैसे होते हैं वैसे ही किस व्यक्ति में कितना

अवतारी अंश है, इसका माप कला के पैमाने से होता है। त्रेता में परशुराम जी और श्रीरामचंद्र जी एक समय में दो अवतार थे। परशुराम जी को तीन कला तथा रामचंद्र जी को बारह कला का अवतार कहा जाता है। यह तो उस समय के विशिष्ट अवतार थे। वैसे अवतार का आवेश तो अनेकों में था। वानरों की महती सेना को तथा अनेकों अन्य व्यक्तियों को 'अवतार' के समतुल्य कार्य करते हुए देखा जाता है।

इस प्रकार समय-समय पर युग-युग में आवश्यकतानुसार अवतार होते हैं। बड़े कार्यों के लिए बड़े और छोटे कार्यों के लिए छोटे अवतार होते हैं। सृष्टि का संतुलन करने वाली विष्णु शक्ति वैसे तो सदा ही अपनी क्रिया जारी रखती है, पर बड़ा रोग इकट्ठा हो जाने पर बड़ा डॉक्टर भेजती है। उस बड़े डॉक्टर को उनके महान कार्यों के अनुरूप यश एवं सम्मान प्राप्त होता है। अवतारी महापुरुषों की पूजा यथार्थ में विष्णु शक्ति की पूजा है, जिसके वे प्रतीक होते हैं।

लक्ष्मीपति विष्णु सृष्टि की सुंदरता की, संपन्नता की, सद्बुद्धि और सात्विकता की रक्षा करते हैं। लक्ष्मीजी के चार हाथ-सुंदरता, संपन्नता, सद्बुद्धि और सात्विकता के प्रतीक हैं। समस्त प्राणियों की समष्टि-सम्मिलित आत्मा लक्ष्मी है। यह लक्ष्मी विष्णु का अर्द्धांग है। परमात्मा की आत्मा में समायी हुई है, संसार का नियमन करती है, साथ-साथ लक्ष्मी की, विश्वमानव की इच्छा की रक्षा करती है। लक्ष्मी विष्णु से अभिन्न है।

विष्णु के उपासक वैष्णव वे हैं जो विश्वमानव की इच्छाओं के अनुकूल कार्य करने में अपनी शक्ति लगाते हैं। नरसिंह मेहता का प्रसिद्ध भजन है—"**वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने रे।**" समाज का लाभ, संसार की सेवा, विश्व की श्री-वृद्धि, विश्वमानव की सुख-शांति के लिए सच्चे अंतःकरण से हर घड़ी लगे रहने वाले मनुष्य असली वैष्णव हैं। विष्णु की इच्छा ही उन वैष्णवों को इच्छा और विष्णु की कार्य प्रणाली ही उनकी कार्य प्रणाली होती है। वे पाप को घटाकर धर्म की स्थापना के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। जनता को विष्णु रूप समझकर लोकसेवा में, विष्णु पूजा में, प्रवृत्त रहते।

४. भगवान

ब्रह्म की चौथी शक्ति 'भगवान' है। भगवान भक्तों के वश में होते हैं। भक्त जैसे चाहते हैं उन्हें नचाते हैं। भक्त जिस रूप में उनका दर्शन करना चाहते हैं उसी रूप में प्रकट होते हैं और उनसे जो याचना या कामना करते हैं उसे पूरा करते हैं। भगवान की कृपा से भक्तों को बड़े-बड़े लाभ होते हैं। परंतु यह भी स्मरण रखने की बात है कि वे केवल भक्तों को ही लाभ पहुँचाते हैं, जिनमें भक्ति नहीं है उनको भगवान से भी कुछ लाभ नहीं हो सकता। अनेकों देवी-देवता भगवान के रूप हैं। जिस देवता के रूप में भगवान का भजन किया जाता है, उसी रूप में वैसे ही फल उपस्थित करते हुए भगवान प्रकट होते हैं।

भगवान की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। आत्मा की सशक्त क्रियारूप को भगवान कहते हैं। आत्मा अनंत शक्तियों का पुंज है, उसकी जिस शक्ति को प्रदीप्त, प्रचंड एवं प्रस्फुटित बनाया जाए वह शक्ति, एक बलवान देवता के रूप में प्रकट होती है और कार्य करती है। किसी पक्के गुंबजदार मकान में आवाज करने से वह मकान गूँज उठता है। आवाज की प्रतिध्वनि चारों ओर बोलने लगती है, रबड़ की गेंद को किसी दीवार पर फेंककर मारा जाए तो जितने जोर से फेंका था, टक्कर खाने के बाद वह उतने ही जोर से लौट आती है। इसी प्रकार अंतरंग शक्तियों का विश्वास के आधार पर जब एकीकरण किया जाता है तो उससे आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न होते हैं।

सूर्य की किरणों को आतिशी शीशे के द्वारा केंद्रबिंदु पर एकत्रित किया जाए तो इतनी गरमी उत्पन्न हो जाती है कि उस केंद्र में अग्नि जलने लगती है। मानसिक शक्तियों को किसी इष्टदेव को केंद्र मानकर यदि एकत्रित किया जाए तो एक सूक्ष्म सजीव चेतना उत्पन्न हो जाती है। यह श्रद्धा निर्मित सजीव चेतना ही भगवान है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में "**भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वासरूपिणौ**" श्लोक में यही भाव प्रकट किया है। उन्होंने भवानी तथा शंकर को श्रद्धा-विश्वास बताया है। श्रद्धा साक्षात भवानी है और विश्वास मनुष्य को मृत्यु के मुख से बचा सकता है और जीवित मनुष्य को क्षणभर में

रोगी बनाकर मृत्यु के मुख में धकेल सकता है। 'शंका डाइन-मनसा भूत' कहावत किसी बड़े अनुभवी ने प्रचलित की है। चित्त से उत्पन्न हुई शंका डाइन बन जाती है और मन का भय भूत का रूप धारण करके सामने आ खड़ा होता है। रस्सी को साँप, झाड़ी को भूत, कड़ुए पानी को जहर बना देने की और मृत्यु का खतरा उत्पन्न करने की शक्ति विश्वास में मौजूद है। केवल घातक ही नहीं निर्माणात्मक शक्ति भी उसमें है। कहते हैं "मानो तो देव नहीं तो पत्थर तो हैं ही।' पत्थर को देव बना देने वाला विश्वास है। विश्वास की शक्ति अपार है। शास्त्र कहता है—"**विश्वासौ फलदायकः।**"

मंत्रशक्ति तथा देवशक्ति और कुछ नहीं आत्मशक्ति या इच्छाशक्ति का दूसरा नाम है। ध्यान, जप, अनुष्ठान आदि की योगमयी साधनाएँ एक प्रकार का मानसिक व्यायाम हैं। जैसे शारीरिक व्यायाम करने से देह पुष्ट होती है और निरोगता, सुंदरता, दीर्घायु, भोग, सुख, सहनशक्ति, धन-उपार्जन तथा कठिन कष्टसाध्य कामों को पूरा करने की प्रत्यक्ष सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वैसे ही मानसिक साधनाओं द्वारा आराधना, उपासना द्वारा मनोबल बढ़ता है और उससे नाना प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। मंत्रशक्ति, देवशक्ति से जो कार्य पूरे होते हैं, वे किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं होते वरन अपने ही पुरुषार्थ द्वारा अपनी आत्मशक्तियों द्वारा उपलब्ध होते हैं। साधना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा आत्मशक्तियाँ बलवान होती हैं और मन चाहे परिणाम उपस्थित करती हैं।

भक्त, भगवान का पिता है। अपनी भक्ति द्वारा वह अपने भगवान को उत्पन्न करता है और पुष्ट करता है। जो अपने भगवान को जितना भक्ति का, साधना का दूध पिलाता है, उसका भगवान उतना ही बलवान हो जाता है और जितना उसमें बल होता है, उतना ही महत्त्वपूर्ण परिणाम वह उपस्थित करता है। प्रह्लाद का भगवान बलवान था कि खंभ चीर डाला। नरसी का भगवान हुंडी बरसा सकता था, परंतु हमारे भगवानों में वह बल नहीं हैं। किसी के भगवान स्वप्न में या जाग्रत अवस्था में दर्शन दे सकते हैं। किसी के भगवान भविष्य में कोई संकेत कर सकते हैं। किसी के भगवान विपत्ति में सहाई हो सकते हैं। तात्पर्य यह है कि जिसने

अपने भगवान को जिस योग्य बनाया होगा, वह वैसे वरदान देने के लिए, वैसी सहायता करने के लिए तैयार रहेगा।

वस्तुत: मनोबल ही भगवान है। मनोबल को बढ़ाने के तरीके अनेकों हैं। योग साधना का भारतीय तरीका ही एकमात्र उपाय नहीं है, संसार में अनेकों साधन और उपाय इसके हैं। विश्वास के आधार पर मनोबल बढ़ता है। कई व्यक्ति बिना योग साधना के भी अपने स्वावलंबन, आत्मविश्वास, अध्यवसाय, साहस, सत्संग एवं पराक्रम द्वारा अपना मनोबल बढ़ा लेते हैं और वही लाभ प्राप्त करते हैं जो भक्तों को भगवान प्रदान करते हैं। अनेक अनीश्वरवादी व्यक्ति भी बड़े-बड़े सिद्ध हुए हैं, राक्षस लोग देवताओं से अधिक साधन संपन्न थे, असुरों को बड़े-बड़े अद्‌भुत वरदान प्राप्त थे, आज भी वैज्ञानिक लोग बड़े-बड़े अद्‌भुत आविष्कार कर रहे हैं। इस सबके मूल में उनकी मानसिक विलक्षण शक्तियाँ काम कर रही हैं। यह भगवान की ही कृपा है। भगवान को सुर और असुर सभी बिना भेदभाव के प्रसन्न कर सकते हैं तथा उनका अनुग्रह और वरदान प्राप्त कर सकते हैं।

ब्रह्म की मूल सत्ता निर्लिप्त है, वह नियम रूप है, व्यक्तिगत रूप से किसी पर प्रसन्न-अप्रसन्न नहीं होती। उस पर आराधना, पूजा या निंदा से कोई प्रभाव नहीं होता। अग्निदेवता को गाली देने वाले या पूजने वाले में भेद की कोई आवश्यकता नहीं। जो भी उसके नियमों में अनुरूप चलेगा लाभ उठावेगा और जो अग्नि को अनियमित रूप से छुवेगा निश्चयपूर्वक जल जाएगा। आत्मा का, ईश्वर का, विष्णु का यही नियम है। पर भगवान की लीला विचित्र है। वे भक्तवत्सल हैं। उन्हें जो जिस भाव से भजता है, कुएँ की आवाज की तरह से उसे वैसे ही भजने लगते हैं। कीर्तन, कथा, जप, तप, पूजा, पाठ, ध्यान, भजन यह भगवान की प्रसन्नता के लिए ही हैं। श्रद्धा और विश्वास न हो तो सारे अनुष्ठान निष्फल हैं।

भगवान से, आत्मबल से, आस्तिक-नास्तिक सभी अपने-अपने ढंग से लाभ उठाते हैं। संसार के महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ने पर उनके अद्‌भुत आश्चर्यजनक कार्यों का जो विवरण मिलता है, उससे हम आश्चर्यान्वित रह जाते हैं और सोचते हैं कि किसी देवता की कृपा से ही

वे इतने बड़े कार्यों को पूरा कर सके होंगे। वह देवता भगवान है जिसे मनोबल भी कहते हैं। प्रयत्न से, साधना से, विश्वास से, श्रद्धा-भक्ति से मनोबल बढ़ता है और फिर उसकी सहायता से बड़े-बड़ें कठिन कार्य पूरे हो जाते हैं। मैस्मेरिज्म विद्या जानने वाले अपने अकिंचन मनोबल से बड़े-बड़े खेल दिखाते हैं। यह बल अधिक हो जाता है तो जिस दिशा में भी चाहे मनुष्य मोर्चे पर मोर्चा फतह करता हुआ आगे बढ़ता जाता है। अनायास, अप्रत्याशित सुअवसर भी उसे प्राप्त होते हैं। धन को देखकर धन-वैभव को देखकर, वैभव और सौभाग्य को देखकर सौभाग्य अपने आप अनायास टपक पड़ते हैं। इन अनायास लाभों में भी 'सबल की सहायता' का ईश्वरीय नियम काम किया करता है।

भगवान कल्पवृक्ष हैं। उन्हें जो जिस भाव से भजता है, उसकी इच्छा पूर्ण करते हैं। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि जो व्यक्ति मन तत्त्व के जिस पहलू को बलवान बना लेता है, उसे उस दिशा में पर्याप्त सफलताएँ मिलती हैं।

इस प्रकार चतुर्मुखी ब्रह्म (ब्रह्मा) की क्रियापद्धति इस सृष्टि में दृष्टिगोचर हो रही है। उपनिषदों में इसे चार वर्ण वाला ब्रह्म भी कहा है। सत प्रधान आत्मा को ब्राह्मण, शासनकर्त्ता को स्वामी, ईश्वर को क्षत्रिय, लक्ष्मीपति विष्णु को वैश्य एवं भक्त के वश में पड़े हुए, भक्त की इच्छानुसार कार्य करने वाले भगवान को शूद्र कहा जाता है। यह विचार-भेद उसकी शक्तियों का रूप समझने-समझाने के लिए आचार्यों ने उपस्थित किया है। वस्तुत: उसकी अनंत शक्तियाँ हैं और वह मनुष्य की बुद्धि की पहुँच से बहुत अधिक आगे हैं।

ईश्वरवाद की व्याख्या और वास्तविकता

यद्यपि ईश्वर संसार का मूल आधार है और सृष्टि के आदि से सभी मनुष्य किसी न किसी रूप में उसे मानते आए हैं, तो भी विद्वानों में इस संबंध में काफी मतभेद हैं। खासकर दार्शनिक विद्वान तो केवल उसकी बात को स्वीकार कर सकते हैं जो तर्कसंगत हो। इस दृष्टि से ईश्वरवाद के सिद्धांत की विस्तारपूर्वक व्याख्या की जानी आवश्यक है।

वैदिक ईश्वरवाद का विश्लेषण करने पर हम उसके अंतर्गत निम्न तत्त्वों का समावेश पाते हैं—(१) ईश्वर हमारे गुप्त कार्यों और विचारों को भी जानता है, वह बहुत बल वाला है। (२) ईश्वर प्रसन्न होने पर भौतिक सुख-सामग्रियाँ और परलोक में स्वर्ग एवं मोक्ष देता है। (३) वह नाराज होने पर दैविक, दैहिक और भौतिक कष्ट देता है। (४) धर्माचरण और उपासना से वह प्रसन्न होता है, पापी और नास्तिक पर अप्रसन्न होता है। अनेकानेक मंत्र, सूत्र, श्लोक इन्हीं चार धारणाओं के आस-पास चक्कर लगाते हैं। अर्थात नाना प्रकार से इन्हीं चार बातों का प्रतिपादन-उपदेश करते हैं।

अब हमें विचार करना चाहिए कि कैसी बुद्धिमत्तापूर्वक मानसिक शासन करने की यह व्यवस्था है। ईश्वर सर्वव्यापक होने से हमारे सब कामों को देखता है, यह शासन की अत्यंत व्यापकता के लिए है। देखा गया है कि पुलिस थाने के पास चोर लोग उपद्रव नहीं मचाते पर जहाँ पुलिस की पहुँच कम और देर में होती है, वहाँ चोरियाँ-डकैतियाँ अधिक होती हैं। भरी हुई चलने वाली सड़कों पर तो लूट नहीं हो सकती, पर निर्जन स्थानों में लुटेरों की खूब घात लगती है। प्रकाश की अपेक्षा अंधकार में अपराध अधिक होते हैं। इससे प्रतीत होता है कि दुष्टता भरे काम की अधिकता एवं न्यूनता इस बात पर निर्भर है कि चोर को कोई देखता है या नहीं? देखने वाला पहलवान है या नहीं? बंदर किसी छोटे बच्चे को कमजोर समझकर उसके हाथ से रोटी छीन ले जाता है, पर बड़े आदमी की ओर बढ़ने में उसकी हिम्मत नहीं पड़ती, क्योंकि बंदर जानता है कि बलवान आदमी सहज में रोटी नहीं छीनने देगा और डंडे से हड्डी-पसली तोड़कर रख देगा। ईश्वर अनंत बल वाला है, सर्वव्यापक है और पाप से अप्रसन्न होता है। इसका अर्थ दूसरे शब्दों में यह हो सकता है कि कोई हाथी जैसे बल वाला पुलिस का खुफिया सिपाही हाथ में संगीन और हथकड़ी लिए अदृश्य रूप से हमारी निगरानी के लिए हर वक्त सिर के ऊपर उड़ता-फिरता है। यह विश्वास जितना ही अधिक सच्चा, स्पष्ट और बलवान होता है उतना ही मनुष्य धर्मप्रिय बन जाता है। उपरोक्त विश्वास जितना ही संशयात्मक, अस्पष्ट, धुँधला और निर्बल होता है उतना ही स्वच्छंदता एवं दांभिकता बढ़ती जाती है। अपराधी

मनोवृत्ति उसी मात्रा में बढ़ती जाती है। ईश्वरीय शासन नहीं है, संदेहात्मक एवं निर्बल है ऐसी मान्यता बढ़ने से मानसिक अराजकता फैलती है। जब गदर होता है तब उपद्रवी लोग पूरी तरह स्वार्थ-साधन करते हैं क्योंकि उनका विश्वास होता है कि राजसत्ता नष्ट या निर्बल हो गई है, वह हमें दंड नहीं दे सकती। हम देखते हैं कि ईश्वर भक्त कहाने वाले लोग भी बड़े पाप करते हैं, इसका मनोवैज्ञानिक हेतु यह है कि पाखंड की तरह लोगों को भुलावे में डालने के लिए सस्ती वाहवाही लूटने के निमित्त, वे लंबे-चौड़े तिलक लगाते हैं, कंठीमाला धारण करते हैं, रामधुन लगाते हैं, पर मानसिक भूमिका के अंतर्गत ईश्वर की अत्यंत ही धुँधली सत्ता धारण किए रहते हैं। ऊपर की पंक्तियों में अदृश्य रूप से चौकीदारी करते हुए सिर पर उड़ने वाले पुलिस मैन के समतुल्य जिस कल्पना का उल्लेख किया गया है, वह चित्र तो उनके मन में बहुत ही धुंधला होता है। इसलिए मानसिक अराजकता के अंधेरे में उनकी पशु-प्रवृत्तियाँ मनमानी करती रहती हैं।

ईश्वरवाद का वह प्रथम सिद्धांत ही आधारभूत है। ऐसी घड़ी किस काम की, जिसमें सुइयाँ न हों। बेपेंदी का लोटा भला किसी की क्या प्यास बुझा सकता है? वेद के जितने ही मंत्रों में ईश्वर संबंधी वर्णन है। उनके अधिकांश भाग में ईश्वर के महानता सूचक गुणों का गान है। उन गुणों में भी सर्वव्यापकता और बल शालीनता का उल्लेख अधिक किया है। प्रयोजन यह है कि मनुष्यों के मस्तिष्क में यह चित्र बहुत ही साफ और सुदृढ़ बन जाए कि वह अनंत बल वाला शंख, चक्र, गदा जैसे कठोर दंड शास्त्रों से सुसज्जित ईश्वर पाप से बहुत कुढ़ता है और हमारी चौकीदारी के लिए अदृश्य रूप से हर घड़ी साथ रहता है। जिसके मन में यह कल्पना चित्र जितना अधिक गहरा और श्रद्धा विश्वासमय है, वह उतना ही बड़ा आस्तिक है। जिसके अंतःकरण में यह विश्वास जितना निर्बल है, वह उतने ही अंशों में नास्तिक है।

चार सिद्धांतों में ऊपर कहा हुआ सर्वव्यापकता का सिद्धांत प्रमुख है। शेष तीन उसकी पूर्ति के लिए हैं। प्रसन्न प्रलोभन का तत्त्व मौजूद है, जो पशु स्वभाव को ललचाने के लिए आवश्यक है। धर्मग्रंथों का बहुत बड़ा अंश 'माहात्म्य' के वर्णन में लिखा हुआ है। गंगास्नान से पाप कट जते हैं, सत्यनारायण की कथा सुनने से धन प्राप्त होता है, शंकर जी औघड़दानी हैं,

वे खुश हो जाएँ तो मालामाल कर देते हैं, हनुमान जी रोगों, भूत-पिशाचों को मार भगाते हैं, तुलसी पूजन से लड़की को अच्छा वर एवं लड़के को गुड़िया सी बहू मिलती है। ब्रह्मकुंड में स्नान करने से संतान होती है। हर एक तीर्थ का, व्रत-उपवास का, पुस्तक सुनने-पढ़ने का, सत्संग का, निदान छोटे से बड़े तक सभी उत्तम कामों के हिंदू धर्मग्रंथों में बड़े-बड़े माहात्म्य लिखे मिलते हैं। वह सब मनुष्य के पशु स्वभाव को ललचाने के लिए हैं। बैल को घास के तृण दिखाते ले जाइए वह आपके पीछे-पीछे चला चलेगा। छोटी मानस चेतना वालों के लिए प्रलोभन आवश्यक समझकर माहात्म्यों का उल्लेख करना धर्माचार्यों के लिए अत्यंत आवश्यक था, इसके बिना वह कार्य आगे न बढ़ता और गाड़ी रुक जाती। ईश्वर के संबंध में भी उन्हें इसी नीति का अवलंबन करना पड़ा।

तार्किक लोग अकसर यह कहते सुने जाते हैं कि भजन का कुछ माहात्म्य नहीं, भजन करने वालों को कोई ऐसी संपदा नहीं मिलती जो भजन न करने वालों को न मिलती हो। यदि मिलती है तो उसमें उनका कर्त्तव्य हेतु होता है भजन नहीं। ऐसे महानुभावों से हमारा निवेदन है कि वे हर बात में तर्क न करें। "दूध पीने से चोटी बढ़ जाएगी।" ऐसे उपदेश माताएँ अपने बच्चों को अधिक दूध पिलाने के लिए करती हैं। "अमुक काम कर लावेगा तो राजा बेटा हो जाएगा" ऐसे-ऐसे प्रलोभनों द्वारा माताएँ अपने बालकों को आज्ञानुवर्ती बनाती हैं। यदि माताएँ इस मार्ग को छोड़कर अधिक दूध पिलाने के लिए बच्चों को समझाएँ कि "दूध में विटामिन, कैल्शियम फास्फोरस, प्रोटीन आदि ऐसे तत्त्व हैं जो रक्त के श्वेत कीटाणुओं की वृद्धि करते हैं", तो यह उपदेश सत्य होने पर भी निरर्थक होगा। आज्ञानुवर्ती बनाने के लिए यदि वे राजाबेटा होने का प्रलोभन छोड़ दें और मनुस्मृति के श्लोक खोलकर धर्मोपदेश सुनावें एवं बच्चों को अल्पज्ञ होने के कारण माता की आज्ञा मानने से ही अधिक मानसिक विकास होता है ऐसा उपदेश करें, तो वह निरर्थक होगा। तार्किक कह सकते हैं कि माता झूठ बोलती है, चोटी बढ़ाने और राजा बेटा होने का प्रलोभन असत्य है। परंतु इतना कहने से ही काम न चलेगा उन्हें वास्तविकता की पेचीदगी तक पहुँचना होगा। छोटे बच्चे का अविकसित

मस्तिष्क लोभ के अतिरिक्त और किसी ढंग से प्रभावित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार धर्माचार्यों ने भी मार्ग में बालबुद्धि स्वल्प ज्ञान रखने वालों के लिए नाना प्रलोभनों से युक्त माहात्म्यों की रचना की और कोई मार्ग भी तो उनके पास नहीं था। इस प्रकार ईश्वर की कृपा से ही सुख मिल सकता है, ऐसी मान्यता रखने वालों से हमारा कुछ विरोध नहीं है। शास्त्र में ईश्वर शब्द बहुत अर्थवाचक है, कहीं-कहीं इसका अर्थ कर्म भी होता है। कर्त्तव्यवादी इस स्थल पर ईश्वर शब्द का अर्थ कर्म करते हों तो कोई आपत्ति नहीं है।

इसके बाद भय का नंबर आता है। अप्रसन्न होने पर ईश्वर नाना प्रकार के दंड देता है। यह प्रलोभन वाले उपरोक्त भाग का दूसरा पहलू है। किसी पदार्थ के दो पहलू होते हैं—एक उजाला दूसरा अँधेरा। ब्रह्मचर्य रखने से बलवान बनोगे यह वीर्य रक्षा का उजेला पहलू है। वीर्य नाश करने से रोगों से ग्रसित हो जाओगे यह उसी एक सिद्धांत का अँधेरा पहलू है। विद्या पढ़ने से कितने सुख मिलेंगे जब यह बताया जाता है, तो यह भी कहा जाता है कि न पढ़ने से बहुत अभावग्रस्त एवं दुखी जीवन बिताना पड़ेगा। इसी प्रकार जहाँ ईश्वर की प्रसन्नता से सुख मिलना कहा गया है, वहाँ उसका अँधेरा पहलू यह भी बताया गया है कि ईश्वर के नाराज होने से दुःख और कष्ट मिलते हैं। लाभ को उजला कहा जाता है, भय उसका अँधेरा पहलू है। लोभ से भी आगे न चलने वाले पशु स्वभाव के लिए अंतिम मार्ग भय ही बच रहता है। धर्म आज्ञाओं पर न चलोगे तो ईश्वर नाना प्रकार की आधि-व्याधियों से व्यथित कर डालेगा। यह भावना अधर्म पर चलने से रोकती है। यदि गहरा विश्वास जम जाए तो निस्संदेह जीवन की सारी क्रियाएँ उसी के अनुकूल होने लगती हैं। पानी में डूबने से मृत्यु हो जाती है। यह विश्वास सदैव गहरे पानी में जाने से सावधान करता रहता है। प्रत्यक्ष रूप से डूबकर मरने का अनुभव अपने को चाहे जीवन भर न हुआ हो पर विश्वास अनुभव से भी अधिक प्रबल होता है। अनुभव को भूला जा सकता है, पर विश्वास का विस्मरण नहीं होता। भूतों का विश्वास अधिकांश में कल्पित होता है, पर उस अंधविश्वास से ही अगणित व्यक्ति सुख-दुःख का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, कितने ही

तो उसी में उलझकर मर तक जाते हैं। निस्संदेह विश्वास बड़ी प्रबल शक्ति है। ईश्वर पाप का दंड देता है। यदि इस बात का पूर्ण निश्चय हो जाए तो संगीन के पहरे में हथकड़ी लगा हुआ कैदी जैसे भलमनसाहत के साथ चलता है वैसा ही आचरण ईश्वरवादी को करना पड़ेगा।

चौथा तत्त्व यह है कि धर्माचरण और उपासना से ईश्वर प्रसन्न होता है इसके विपरीत से अप्रसन्न। धर्माचरण की बात हम उपरोक्त पंक्तियों में विस्तारपूर्वक समझा चुके हैं कि तुच्छ स्वार्थ से, पशुवृत्ति से, सामाजिक जीवन की ओर बढ़ने के लिए धर्म का सारा विधान है और उस विधान की रक्षा के लिए ईश्वरीय शासन की स्थापना है। इसलिए यह बात सामने आने पर भारी संदेह उठ खड़ा होता है क्योंकि इससे तो ईश्वर चापलूसी पसंद, पक्षपाती, नवाब प्रकृति का सिद्ध होता है। उसकी अलिप्तता, समदर्शीपन, निस्पृहता पर स्पष्ट आक्षेप आता है और वह भी साधारण मनोविकारी मनुष्य की सीमा में आ जाता है। इस संदेह का समाधान करने के लिए केवल शुष्क वाद-विवाद से काम न चलेगा वरन हमें गहराई में उतरकर उस निमित्त का पता लगाना होगा जिसके कारण ईश्वर को उपासनाप्रिय स्वभाव वाला माना गया है। डॉक्टर ने अपने अनुसंधानों के आधार पर यह प्रमाणित कर दिया है कि मूल वृत्तियों के विरुद्ध यदि कोई नवीन मार्ग निकालना हो तो उसके बार-बार लगातार और कठोर प्रयत्न द्वारा नई आदत डालनी पड़ती है, इस पर भी वह आदत इतनी निर्बल होती है कि कुछ दिनों उसकी ओर से उदासीनता धारण कर ली जाए तो वह मिट जाती है। इसलिए ऐसी आदतों को सुरक्षित करने के लिए निरंतर प्रयत्न करते रहना पड़ता है। यह अनादि सत्य वैदिक ऋषियों को भी ज्ञात था। उन्होंने सोचा कि ईश्वरीय शासन की सर्वांगीण व्यवस्था बना देने पर भी यह पशु-प्रवृत्तियों के मुकाबले में हलकी रहेगी और जरा भी ढील देने पर कठिनाई बढ़ जाएगी। इसलिए नित्य कई-कई विशेष प्रेम एवं भक्ति के साथ मूर्तिपूजा के सहारे ध्यान में मग्न होकर नित्य नैमित्तिक कर्मकांडों द्वारा ईश्वर की पूजा, उपासना करते रहने का आदेश किया। पतंग बनाई जाए, उसमें डोरी बाँधी जाए, हवा में उड़ाई जाए फिर डोरी को हाथ में से छोड़ दिया जाए तो सारा प्रयत्न निरर्थक हो जाए। जब तक

पतंग को हवा में उड़ाना है, तब तक डोरी को हाथ में रखना चाहिए, उसकी गतिविधि का संचालन करना चाहिए। फौजी सिपाहियों को नित्य परेड करनी पड़ती है ताकि वह उस शिक्षा को भूल न जाएँ वरन अभ्यस्त बने रहें। धर्म की रक्षा के लिए ईश्वर का शासन बनाया गया, पर बिना नियमितता के वह शासन विधान कैसे चलेगा? चूँकि ईश्वरवाद नया शिक्षण है, स्वार्थों को जीवन जानता है, पर ईश्वर के बारे में उसकी मनुष्य योनि में ही ज्ञान मिलता है। पुरानी आदत के मुकाबले में नई, निश्चय ही कमजोर होती है। जंगली सुग्गा बेर-जामुन खाया करता है, पर सोने की पिंजड़े में दाख, अंगूर खाने का नया सुख ग्रहण करने के लिए पकड़ा जाना पसंद नहीं करता। पिंजड़े में उत्तम रहन-सहन मिलने पर भी वह फिर से उड़ जाने का यत्न किया करता है, पिंजड़े की तीलियों से लड़ते हुए भागने का उसका यह यत्न नित्य ही देखा जा सकता है। यदि पिंजड़ा कमजोर हो तो संभव है कि नई सुव्यवस्था को ठुकराकर सुग्गा उड़ जाए, चाहे उसे जंगल में कष्ट ही क्यों न सहना पड़े? यही देवासुर संग्राम मनुष्य के मन में नित्य होता है। आगे बढ़ने और पीछे हटने की रस्साकशी ही खिंची रहती है। ढील पड़ते ही गुड़-गोबर हो सकती है। इसलिए ईश्वरवाद के आचार्यों ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि ईश्वर की नित्य उपासना, करनी चाहिए। इसके बिना ईश्वरीय शासन पर विश्वास करने का लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। यही लाभ प्राप्त करना ईश्वर की प्रसन्नता एवं उसे प्राप्त न करना उसकी अप्रसन्नता के अर्थों में कहा गया है।

हम मानते हैं कि ईश्वर निस्पृह है उसे निंदा-स्तुति की आवश्यकता नहीं, परंतु यह भी मानना पड़ेगा कि नित्य की उपासना किए बिना ईश्वरीय शासन का विश्वास मन में दृढ़ बनाए रखना कठिन है। प्रसन्नता-अप्रसन्नता को आलंकारिक शब्दों में यहाँ इसी प्रयोजन से प्रयोग किया गया है। प्रसन्न होना सुख देना, अप्रसन्न होना दुःख देना ईश्वर के इस कार्यक्रम पर हम मोटी दृष्टि से वाद-विवाद करके किसी ठीक निश्चय पर नहीं पहुँच सकते। यदि हम आज इसका भावार्थ यों समझें कि ईश्वर उपासना में मनुष्य अपने पशु स्वभाव को दबाए रहकर सुख-शांतिमय

जीवन बिताता रह सकता है, तो यह अर्थ ठीक शास्त्रकार की आंतरिक इच्छा के ही अनुकूल होगा। माहात्म्यों का वर्णन करते समय प्रलोभनों का समावेश जिस दृष्टि से हुआ है उसी दृष्टि से, उपासना से ईश्वर के प्रसन्न होने और सुख देने का वर्णन है। मूल तात्पर्य इतना ही है कि ईश्वरीय विश्वासों को दृढ़ रखने का निरंतर अभ्यास रखना आवश्यक है, जिससे धर्माचरण के लिए हमारे पूज्य पूर्वजों ने जो गूढ़ मानसिक रहस्यों के आधार पर ईश्वरवाद की महत्त्वपूर्ण व्यवस्था बनाई है, वह सुदृढ़ और सुव्यवस्थित बनी रहे।

ईश्वर की अनुभूति कैसे हो ?

जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होगी, वह उतनी ही व्यापक होगी। पंचभूतों में पृथ्वी से जल, जल से वायु, वायु से अग्नि और अग्नि से आकाश सूक्ष्म है, इसलिए एकदूसरे से अधिक व्यापक हैं। आकाश-ईथर तत्त्व हर जगह व्याप्त है, पर ईश्वर की सूक्ष्मता सर्वोपरि है, इसलिए इसकी व्यापकता भी अधिक है। विश्व में रंचमत्र भी स्थान ऐसा नहीं है जहाँ ईश्वर न हो। अणु-अणु में उसकी महत्ता व्याप्त हो रही है। स्थान विशेष में ईश्वर तत्त्व की न्यूनाधिकता हो सकती है। जैसे कि चूल्हे के आस-पास गरमी अधिक होती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि उस स्थान पर अग्नि-तत्त्व की विशेषता है, इसी प्रकार जलाशयों के समीप शीतल स्थान में अग्नि तत्त्व की न्यूनता कही जाएगी। जहाँ सत्य का, विवेक का आचरण अधिक है, वहाँ ईश्वर की विशेष कलाएँ विद्यमान हैं। जहाँ आलस्य, प्रमाद, पशुता अज्ञान है, वहाँ उसकी न्यूनता कही जाएगी। संपूर्ण शरीर में जीव व्याप्त है, जीव के कारण ही शरीर की स्थिति में और वृद्धि होती है, परंतु उनमें भी स्थान विशेष पर जीव की न्यूनाधिकता देखी जाती है। हृदय, मस्तिष्क, पेट और मर्मस्थानों पर तीव्र आघात लगने से मृत्यु हो जाती है, परंतु हाथ-पाँव, कान-नाक, नितंब आदि स्थानों पर उससे भी अधिक आघात सहन हो जाता है। बाल और पके हुए नाखून जीव की सत्ता से बढ़ते हैं, पर उन्हें काट देने से जीव की कुछ भी हानि नहीं होती। संसार में सर्वत्र ईश्वर व्याप्त है। ईश्वर की शक्ति से ही सब काम होते हैं परंतु सत्य और धर्म के कामों में ईश्वरत्व की अधिकता है। इसी

प्रकार पाप-प्रवृत्तियों में ईश्वरीय तत्त्व की न्यूनता समझना चाहिए। धर्मात्मा, मनस्वी, उपकारी, विवेकवान और तेजस्वी महापुरुषों को 'अवतार' कहा जाता है क्योंकि उनकी सत्यनिष्ठा के आकर्षण से ईश्वर की मात्रा उनके अंतर्गत अधिक होती है। अन्य पशुओं की अपेक्षा गौ में तथा अन्य जातियों की अपेक्षा ब्राह्मण में ईश्वर अंश अधिक माना गया है क्योंकि उनकी सत्यनिष्ठा, उपकारी स्वभाव ईश्वर भक्ति को बलपूर्वक अपने अंदर अधिक मत्रा में खींचकर धारण कर लेता है।

उपरोक्त पंक्तियों में बताया जा चुका है कि संपूर्ण जड़-चेतन सृष्टि का निर्माण, नियंत्रण, संचालन और व्यवस्था करने वाली आद्य बीज शक्ति को ईश्वर कहते हैं। यह संपूर्ण विश्व के तिल-तिल स्थान में व्याप्त है और सत्य की, विवेक की, कर्त्तव्य की जहाँ अधिकता है, वहाँ ईश्वरीय अंश अधिक है। जिन स्थानों में अधर्म का जितने अंशों में समावेश है, वहाँ उतने ही अंश में ईश्वरीय दिव्य सत्ता की न्यूनता है।

सृष्टि के निर्माण में ईश्वर का क्या उद्देश्य है? इसका ठीक-ठाक कारण जान लेना मानव बुद्धि के लिए अभी तक शक्य नहीं हुआ। शास्त्रकारों ने अनेक अटकलें इस संबंध में लगाई हैं, पर उनमें से एक भी ऐसी नहीं है जिससे पूरा संतोष हो सके। सृष्टि रचना में ईश्वर का उद्देश्य अभी तक अज्ञेय बना हुआ है। भारतीय अध्यात्मवेत्ता इसे ईश्वर की 'लीला' कहते हैं। अतः ईश्वरवद का सिद्धांत सर्वथा स्वाभाविक और मनुष्य के हित के अनुकूल है। आज तक मानव समाज ने जो कुछ उन्नति की है, जिसका सबसे बड़ा आधार ईश्वरीय विश्वास ही है। बिना परमात्मा का आश्रय लिए मनुष्य की स्थिति बड़ी निराधार हो जाती है, जिससे वह अपना कोई भी लक्ष्य स्थिर नहीं कर सकता और बिना लक्ष्य संसार में कोई महान कार्य संभव नहीं हो सकता। इसलिए परमात्मा के विराट स्वरूप के रहस्य को समझकर ही हमको संसार में अपनी जीवनयात्रा संचालित करनी चाहिए।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।